प्रवचन-१९९, गाथा-१६८, श्लोक २८३, शुक्रवार, आषाढ़ कृष्ण ५, दिनांक ०१-०८-१९८०

प्रवचनसार की ५४वीं गाथा। ५४ गाथा आधार।

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं।
सयलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं।।

आहाहा! प्रत्यक्षज्ञान किसे कहते हैं? ज्ञान, अपना जो स्वभाव, उसका प्रत्यक्षपना, वह उसका स्वभाव है। तो वह ज्ञान का प्रत्यक्षपना किसे कहते हैं? **देखनेवाले का जो ज्ञान...** है। देखनेवाले का जो ज्ञान अमूर्त को जानता है। अमूर्त को भी जानता है। आहाहा! आकाशादि अमूर्त सर्व को देखे। **मूर्त...** पदार्थों को भी देखे। मूर्त पदार्थ को देखे - जड़ परमाणु। और **अतीन्द्रिय...** को देखता है। अतीन्द्रिय भगवान ज्ञानस्वभाव... आहाहा! उसका प्रत्यक्ष स्वभाव ही है। वह अतीन्द्रिय को जानता है।

और प्रच्छन्न को... गुप्त है, उसे भी जानता है। भूत, भविष्य पर्याय पृच्छन्न-गुप्त है। उसे भी ज्ञान प्रत्यक्ष जानता है। आहाहा! ज्ञान का स्वभाव, आत्मा का ज्ञानस्वभाव, वह सर्व को प्रत्यक्ष जाने, वह उसका पूर्णरूप है। यह उसका-आत्मा का पूर्णस्वरूप है। तो कहते हैं पृच्छन्न। भविष्य की पर्याय जो अभी नहीं हुई, उसे भी जाने। भूतकाल की / गत काल की तो जाने, परन्तु भविष्य की जो पृच्छन्न पर्याय है, उसे भी प्रत्यक्ष जाने। प्रत्यक्ष जाने कि यह पर्याय इस जगह है। आहाहा! ऐसा ज्ञान का प्रत्यक्ष होने का स्वभाव है। प्रत्यक्षस्वरूप ही उसका है। आहाहा! एक भी बात का माहात्म्य आने पर दूसरी सभी बातों का माहात्म्य ख्याल में आ जाता है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप, वह किसी का करे नहीं, दया पाले नहीं, व्रत करे नहीं, कुछ कर नहीं। ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। तथा ज्ञान परोक्ष रहे, ऐसा भी स्वभाव नहीं। पर का तो कुछ करे नहीं परन्तु व्यवहार से परोक्ष रहे, वह भी नहीं। उसका तो प्रत्यक्ष रहने का स्वभाव है। ढंकी हुई बात, गुप्त बात को भी जाने। आहाहा! जानना उसका स्वभाव है, वह प्रत्यक्ष होकर जानता है।

और प्रच्छन्न को इन सबको—स्व को... सबका अर्थ **स्व को तथा पर को—** सब अर्थात् स्व तथा पर। आहाहा! सब **देखता है,...** ऐसा उसका स्वभाव है। किसी का

कुछ करना, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! पर की दया पालना, वह भी आत्मा का स्वभाव नहीं। गजब बात है। आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा, केवलज्ञानी प्रभु परमात्मा ने प्रत्यक्ष ज्ञान देखा। कहते हैं, यह तो जानना-देखना पूर्ण उनका स्वभाव है। किसी एक रजकण का करना या किसी की दया करना, किसी को सुखी करना या किसी को दुःख से हटाना, वह कोई आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : गरीबों के आँसू पोंछना।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिपूर्णस्वरूप। आहाहा!

मुमुक्षु : गरीबों के आँसू पौंछना या नहीं? ऐसा पूछते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब के आँसू-बाँसू पौंछता नहीं। कोई गरीब है ही नहीं। वास्तव में देखो तो भगवान आत्मा, सब शरीर में रहनेवाले आत्मा भगवान हैं। परिपूर्ण भगवान हैं, प्रत्यक्ष भगवान है ही, शक्तिरूप से तो प्रत्यक्ष स्वभाव है ही। आहाहा! किसी गरीब के आँसू पौंछना या किसी को भगवान की कृपा हो जाए तो कल्याण हो जाए, ऐसी बात है नहीं। यह तो प्रत्यक्ष एक समय में स्व और पर को अर्थात् सबको जाननेवाले हैं। है?

स्व को तथा पर को—देखता है, वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। यह ज्ञान प्रत्यक्ष है, एक भाव का भी पक्का निर्णय करना। आहाहा! इसमें कितनी बात आ जाती है। आत्मा एक समय में प्रत्यक्ष सब जाने, इसमें कितनी बात आ जाती है। पर का कर सकता नहीं, पर को दे सकता नहीं, पर की दया पाल सकता नहीं। आहाहा! सत्य बोल सकता नहीं। भगवान सत्य बोल सकता नहीं। आहाहा! वह तो प्रत्यक्ष जाननेवाला भगवान है। बोलने की भाषा तो जड़ की है। जड़ की भाषा भी आत्मा कर नहीं सकता। आहाहा! यह प्रवचनसार की (गाथा है)।

वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। उसका नाम ज्ञान प्रत्यक्ष कहते हैं। स्व और पर को, पृच्छन्न और प्रगट को सबको एक समय में पर को स्पर्श किये बिना अपने में जानता है। वह पर को जानता है, ऐसा कहना, वह भी अभी व्यवहार है। आहाहा! अपने को-पूर्णस्वरूप को जानता है, उसमें सब आ गया। कठिन बात है, भाई! आहाहा! मोक्ष का मार्ग, वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा का मोक्षमार्ग बहुत अलौकिक है। आहाहा!

एक ही गुण में प्रत्यक्षपने का निर्णय करे तो उसमें बहुत बात आ जाती है। वह ज्ञान पर का तो कुछ करता नहीं। पर से ले नहीं, अल्पज्ञपना रह सके नहीं, अल्पपना रह सके नहीं, पूर्ण हो जाए—ऐसी उसकी शक्ति है। स्व और पर, प्रगट और अप्रगट सर्व को प्रत्यक्ष ज्ञान जानता है। ऐसे एक ज्ञानगुण की पर्याय का स्वभाव है। ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! यह निर्णय करे तो मैं का कुछ कर सकता हूँ, पर से मुझमें कुछ आ जाता है, पर मुझमें कुछ मन्त्र-तन्त्र कर दे, ऐसा कुछ नहीं होता। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी चन्द्रप्रभु शीतलचन्द्रस्वभाव ज्ञान परिपूर्ण स्व और पर को सबको प्रत्यक्ष जाने, वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। आहाहा! एक शब्द में तो बहुत भरा है। ज्ञान पंच महाव्रत पाले, पाप लगे तो दोष-प्रायश्चित्त ले, वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं। आहाहा!

प्रत्यक्ष ज्ञान एक समय में पूर्ण स्व को और पूर्ण पर को, एक समय में पर को स्पर्श किये बिना अपनी ताकत से प्रत्यक्ष जाने, उसका नाम ज्ञान प्रत्यक्ष कहते हैं। वीतरागमार्ग में उसे ज्ञान प्रत्यक्ष कहते हैं। आहाहा!

श्लोक - २८३

तथाहि –

(मंदाक्रांता)

सम्यग्वर्ती त्रिभुवन-गुरुः शाश्वतानन्त-धामा,
लोकालोकौ स्वपरमखिलं चेतनाचेतनं च।
तार्तीयं यन्नयन-मपरं केवल-ज्ञान-सञ्ज्ञं,
तेनैवायं विदितमहिमा तीर्थनाथो जिनेन्द्रः ।।२८३।।

और (इस १६७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(वीरछन्द)

यह तृतीय सर्वोत्तम चक्षु जिसका केवलज्ञान सुनाम।
जिससे जग ने महिमा जानी ऐसे तीर्थनाथ भगवान॥

लोकालोक अचेतन-चेतन निज-पर को सम्यक् जानें।
जो हैं त्रिभुवन के गुरु उनका है अनन्त शाश्वत निज धाम॥२८३॥

[श्लोकार्थः—] केवलज्ञान नाम का जो तीसरा उत्कृष्ट नेत्र, उसी से जिनको प्रसिद्ध महिमा है, जो तीन लोक के गुरु हैं और शाश्वत अनन्त जिनका *धाम है—ऐसे यह तीर्थनाथ जिनेन्द्र लोकालोक को अर्थात् स्व-पर ऐसे समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को सम्यक् प्रकार से (बराबर) जानते हैं।२८३।

श्लोक - २८३ पर प्रवचन

और (इस १६७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

सम्यग्वर्ती त्रिभुवन-गुरुः शाश्वतानन्त-धामा,
लोकालोकौ स्वपरमखिलं चेतनाचेतनं च।
तार्तीयं यन्नयन-मपरं केवल-ज्ञान-सञ्ज्ञं,
तेनैवायं विदितमहिमा तीर्थनाथो जिनेन्द्रः।।२८३।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **केवलज्ञान नाम का जो तीसरा उत्कृष्ट नेत्र...** आहाहा! यह नेत्र नहीं परन्तु तीसरा नेत्र। यह नेत्र तो जड़ है। इनसे देखे वह तो परोक्ष है, वह भी इनसे नहीं देखता। देखना तो देखनेवाली शक्ति देखती है। आहाहा! उस इन्द्रिय को नहीं देखता। यह तो जड़ है। अन्दर में देखनेवाला है, वह देखता है।

यहाँ कहते हैं कि **केवलज्ञान नाम का जो तीसरा उत्कृष्ट नेत्र...** अन्तर में केवलज्ञान का तीसरा नेत्र जहाँ खुला... आहाहा! **उसी से जिनको प्रसिद्ध महिमा है, जो तीन लोक के गुरु हैं...** आहाहा! णमो अरिहन्ताणं। उनका केवलज्ञान कितना है, इसकी खबर नहीं। आहाहा! णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, ऐसा किया करे। अनन्त बार रटा करे। परन्तु उनका गुण, वस्तु का स्वतः सहजस्वभाव परिपूर्ण भरपूर है, ऐसी अन्दर अनुभव प्रतीति बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। धर्म की शुरुआत नहीं होती। आहाहा! और उस बात को पर

* **धाम = (१) भव्यता; (२) तेज; (३) बल।**

की बात की अन्दर अपेक्षा भी नहीं है। निरपेक्ष अपने को और पर को अन्दर जानता है। आहाहा!

केवलज्ञान नाम का जो तीसरा उत्कृष्ट नेत्र उसी से जिनको प्रसिद्ध महिमा है, जो तीन लोक के गुरु हैं... आहाहा! गुरु अर्थात् जाननेवाला। तीन लोक में उत्कृष्ट। तीन लोक के गुरु अर्थात् कहीं मालिक नहीं। तीन लोक में बड़े हैं। तीन लोक में बड़े में बड़ा प्रभु आत्मा है। आहाहा! यह पैसेवाला करोड़पति, अरबपति बड़ा गुरु है, यह बात तो कहीं धूल में भी रही नहीं। आहाहा! अरबोंपति मरकर नरक में जाए। आहाहा! चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त। अरबोंपति कहाँ? उसे तो एक मिनिट में अरबों की आमदनी। एक मिनिट में! ऐसा छह खण्ड का राज भोगा और अन्दर आत्मस्वरूप का भान किया नहीं। मरकर (नरक गया। यहाँ) रत्न के पलंग पर सोता था, रत्न के पलंग पर सोता हुआ... आहाहा! वह एक क्षण में जहाँ यहाँ सोता है, वह दूसरे क्षण में सातवें नरक में तैंतीस सागर (की आयु में) गया। आहाहा! विश्वास। सत्य और असत्य का फल क्या? और असत्य तथा सत्य का फल क्या है, इसकी परीक्षा किये बिना मानना, वह कुछ है नहीं। आहाहा! कहाँ रत्न के पलंग में सोता था। परन्तु पापी छह खण्ड का... आहाहा! राग और स्त्री, स्त्री। मरते हुए मुँह से कुरुमति... कुरुमति बोलता था। स्त्री। आहाहा! छियानवें हजार स्त्रियों में मुख्य स्त्री थी, उसका राग करता था। मरकर सातवें नरक में गया। अरे रे!

जिसका पूर्ण स्वभाव है, उसे नहीं मानकर पर में सुख है, पर को देखने से मेरी महिमा है, (ऐसा मानता है)। मेरी महिमा मुझे देखना, वह मेरी महिमा है। आहाहा! ऐसा नहीं मानकर पर की महिमा में रच-पच गया तो अपनी महिमा छूट गयी। यह बताते हैं। तीन लोक के गुरु। गुरु का अर्थ—तीन लोक में उनके जैसा बड़ा कोई नहीं। आहाहा! तीन लोक का कहीं स्वामी नहीं है। एक परमाणु का भी कहीं मालिक नहीं है। तीन लोक में बड़े गुरु, महागुरु। आहाहा!

और शाश्वत अनन्त जिनका धाम है— आहाहा! शाश्वत् जिसका तेज है। केवलज्ञानी परमात्मा, जिनका शाश्वत् धाम। धाम कहो, तेज कहो, स्थल कहो, स्थान कहो। आहाहा! पूर्ण जिनका तेज। चैतन्य का पूर्ण जिनका तेज खिल निकला है। वह अपने स्वभाव के आश्रय से (खिला है)। किसी क्रियाकाण्ड से नहीं। अभी गाया न?

उसमें वह भाषा भले सब आयी, परन्तु मूल बात यह 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख' वजन वहाँ है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द में अपनी अखण्ड वृत्ति 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख' स्वसन्मुख करना। वहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र उड़ गये। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से कुछ होगा। 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख' अपनी परिणति को अखण्ड स्वभाव सन्मुख करेगा उसे आत्मा का पता मिलेगा। आहाहा! किसी क्रियाकाण्ड से मिलता है, ऐसा है नहीं कि व्रत पाले और अपवास करे और यह करे इसलिए कुछ मिले (ऐसा नहीं है)। वह तो शुभभाव है, संसार है, उसमें भवभ्रमण है। आहाहा! कठिन काम है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, **गुरु हैं और शाश्वत अनन्त जिनका धाम है—** उनका स्थान ही शाश्वत् अविनाशी... आहाहा! उसका बल, शाश्वत् अन्दर बल। अनन्त तेज, तेज का बल, अनन्त-अनन्त तेज और बल है। ऐसा शक्तिवान वह आत्मा भगवान है। आहाहा! **ऐसे यह तीर्थनाथ जिनेन्द्र लोकालोक को अर्थात् स्व-पर ऐसे समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को सम्यक् प्रकार से (बराबर) जानते हैं।** सम्यक् प्रकार से जानते हैं। जैसा है, वैसा जानते हैं। आहाहा! भविष्य की पर्याय नहीं प्रगट हुई, उसे भी वर्तमान प्रत्यक्ष देखते हैं। यह मानना वह साधारण नहीं है। अनन्त काल, अनन्त काल के पश्चात् जो पर्याय अनन्त द्रव्य की होगी, वह वर्तमान समय की एक पर्याय में सब प्रत्यक्ष जानते हैं। वर्तमान एक समय के ज्ञान की पर्याय में सब जानते हैं। आहाहा!

यह तो एक बार कहा था न? कि एक समय की ज्ञान की पर्याय तीन लोक-तीन काल जाने। अपना पूर्ण द्रव्य जाने, पूर्ण गुण जाने और अनन्त पर्याय है, उसे भी जाने। तो एक ही पर्याय जगत में है, वह सब है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? यह बात यहाँ कहते हैं। केवलज्ञान... केवलज्ञान... केवलज्ञान... एक गुण की एक पर्याय, अनन्त गुण की पर्याय तो अनन्त रही। एक गुण की एक पर्याय वह अनन्त पर्याय को जाने, द्रव्य-गुण को जाने, अपने को जाने, लोकालोक को जाने। एक ही समय की पर्याय में सर्वस्व आ गया। आहाहा! यह बात कैसे जँचे? ओहोहो!

एक समय की पर्याय वह एक ही है। उसमें कुछ दूसरा है नहीं। दूसरे का उसमें ज्ञान है। एक ही समय की पर्याय वही सर्वस्व है। आहाहा! ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें। प्रत्येक पर्याय में ऐसी परिपूर्णता है। आहाहा! कि जिसमें कुछ भी नहीं जाने, ऐसा है

नहीं। आहाहा! माहात्म्य आवे तब न! एक समय की एक केवल पर्याय केवलज्ञान त्रिकाली को जाने, द्रव्य को जाने, गुण को जाने, अपनी अनन्त पर्याय, ऐसी अनन्तगुणी है, उन्हें जाने और लोकालोक को जाने। आहाहा! एक समय की पर्याय की इतनी ताकत! परन्तु वृत्ति द्रव्य के सन्मुख हो, तब वह पर्याय प्रगट होती है। द्रव्यसन्मुख हो, अखण्डानन्द भगवान परमात्मा के सन्मुख होवे तो एक समय में ऐसी पर्याय प्रगट होती है। दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! कठिन काम है। यह व्यवहार-व्यवहार करते हैं न पुण्य? पुण्य करो... पुण्य करो... पुण्य करो... शुभभाव करो... करते-करते होगा। धूल भी नहीं होगा। शुभभाव, वह घोर संसार है। बताया था न? इसमें बताया था न? शुभभाव घोर संसार। आहाहा! एक समय की पर्याय सर्व को जाने, ऐसा ही उसका प्रत्यक्ष स्वभाव है। शुभ-अशुभ भाव तो मैल है। मैल-वैल उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! थोड़ा भी सत्य होना चाहिए। वह पूर्ण पर्याय एक समय में जाने, उसकी ताकत ऐसी है। आहाहा!

यह प्रश्न उठा था न, कहा था न? (संवत्) १९७२ के वर्ष में। वे कहें, केवली ने देखा होगा, वैसा होगा। उसमें हम क्या करें? केवली हुए... १९७२ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? ६४। डाह्याभाई! उस दिन प्रश्न उठा था, १९७२ के वर्ष में। भगवान ने देखा होगा, उसमें फेरफार नहीं होगा, इसलिए हम कुछ पुरुषार्थ नहीं कर सकते।

प्रभु! मैंने कहा। १९७२ की बात है। फाल्गुन महीना। १९७२ का फाल्गुन महीना। आहाहा! कहा, भगवान एक समय में सब जानते हैं, ऐसी प्रतीति पहले आयी? फिर केवलज्ञानी ने देखा होगा, वैसा होगा, यह बात बाद में। डाह्याभाई! आहाहा! एक समय में एक पर्याय सर्व को पूर्ण जाने, ऐसी सत्ता की अस्ति जगत में है। आहाहा! ऐसी सत्ता की श्रद्धा कब होती है? अपने ज्ञायक त्रिकाल स्वभाव के सन्मुख होकर एक समय की पर्याय सबको जाने और जाने वैसा ही होता है। परन्तु उसकी पर्याय की दृष्टि द्रव्य पर जाए, तब उसका निर्णय होता है। आहाहा! डाह्याभाई! यह तो १९७२ के वर्ष की बात है। ६४ वर्ष हुए। दो वर्ष चला। दो वर्ष सुना। १९७० और १९७१। ७० में दीक्षा। कहा, यह कहते हैं, वह झूठा कहते हैं। यह क्या करते हैं? केवली ने देखा होगा हम कुछ पुरुषार्थ नहीं करते। फिर एक व्यक्ति ने कहा था। वह उजमशी था न? रोजकावाला उजमशी नहीं? रोजकावाला। एक बार मैं बाहर बैठा था और उसे कहते थे। यह सब बात पहले

हो गयी न ? तो कहे, तुम ऐसा कहते हो, फिर यह मुँडाकर किसलिए बैठे हो ? अन्दर ही अन्दर विवाद। भगवान ने देखा होगा, तब होगा तो तुम्हारी मुँडाकर हाथ में तो आया नहीं। आहाहा! रोजकावाला उजमशी था। गुजर गया। श्रद्धा में कुछ ठिकाना नहीं था। सम्प्रदाय में श्रद्धा में कुछ ठिकाना नहीं। कुछ न कुछ विपरीत मिथ्याश्रद्धा सम्प्रदाय में। आहाहा! क्या करे ? इतनी दरकार भी कहाँ है ? धन्धे के कारण, पाप के कारण पूरा दिन।

यहाँ तो कहते हैं कि एक समय की पर्याय केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, ऐसा यदि कोई निर्णय करे तो उसकी दृष्टि ज्ञान पर, आत्मद्रव्य पर जाती है। द्रव्य पर जाए तो सम्यग्दर्शन होता है। वह ऐसा मानता है कि जैसा होता है, वैसा जानना। परन्तु वह तो पुरुषार्थ से पहले प्रयत्न किया और समकित हुआ, वह मानता है। ऐसे का ऐसा माने कि देखा होगा, वैसा होगा; देखा होगा, वैसा होगा। परन्तु देखनेवाले हैं या नहीं ? जगत में देखनेवाले हैं या नहीं ? और देखनेवाले की सत्ता की सामर्थ्य कितनी है ? आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

केवलज्ञान अर्थात् एक समय का प्रत्यक्ष ज्ञान। ओहोहो! उसकी जहाँ अन्तरप्रतीति हुई, तब तो अन्तर द्रव्य सन्मुख हुआ और केवलज्ञान सन्मुख होनेवाला है। आहाहा! किस ओर में द्रव्य सन्मुख हुआ, उस ओर साध्य में केवलज्ञान। आता है न उपाय और उपेय में ? समयसार में आता है न उपाय-उपेय। समकिती का ध्येय द्रव्य है परन्तु साध्य सिद्ध है। समझ में आया ? यह थोड़ी-थोड़ी बात है। धर्मी जीव का ध्येय द्रव्यस्वभाव है। पूर्ण द्रव्य स्वभाव, वह उसका ध्येय है और उसका साध्य केवलज्ञान है। केवलज्ञान साधनार्थ... आहाहा! इसके अतिरिक्त दूसरी लप उसे है नहीं। आहाहा!

तीन लोक के नाथ महाविदेह में विराजते हैं। उनकी वाणी निकलती होगी। आहाहा! जहाँ एकावतारी इन्द्र, एक भवतारी इन्द्र, बत्तीस लाख विमान का स्वामी, वह यह बात कुत्ती के बच्चे की तरह बैठकर सुनते हैं। भालू, बाघ और सिंह, सिंह और बाघ भगवान के पास अभी महाविदेहक्षेत्र में सुनते हैं और बैठते हैं। आहाहा! ऐसे नजर करता हूँ, इसलिए वहाँ... इस ओर है। महाविदेहक्षेत्र में इस ओर भगवान विराजते हैं। आहाहा! उन परमात्मा की यह वाणी है। क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। साक्षात् समवसरण में सुना था। आहाहा! हम भी साथ में थे, सुना था। हम भगवान के पास थे। आहाहा! परिणाम में अन्त में अन्तर पड़ गया। यह गरीब भरतक्षेत्र, जिसमें केवलज्ञान

उत्पन्न नहीं होता, मन:पर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं होता, ऐसा यह गरीब क्षेत्र, यहाँ अवतार हो गया। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि एक समय की पर्याय... आहाहा! तीन काल-तीन लोक स्व और पर सबको देखते हैं। यह भाषा तो सुनी परन्तु अन्दर में प्रतीति होना... आहाहा! वह प्रतीति पूर्ण स्वभाव जो है, अभी प्रत्यक्ष अन्दर पूर्ण स्वभाव है, उस ओर दृष्टि करने पर 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख' अन्दर परिणति, वृत्ति अर्थात् परिणति अन्तर में सन्मुख करने पर जो प्रतीति हुई, उसमें केवलज्ञान की प्रतीति भी आ गयी। आहाहा! जब जो होनेवाला होगा, वह भी उसमें आ गया, क्रमबद्ध भी आ गया। भगवान ने देखा, वह क्रमबद्ध। जिस समय में जो पर्याय जहाँ होगी, वह भगवान ने देखा है। आहाहा!

दूसरी बात कही थी? सभी द्रव्य जो हैं, वे सामान्य और विशेष हैं, तो सामान्य तो सब पदार्थ (हैं, वे) विशेष—पर्याय बिना नहीं रहते। विशेष पर्याय बिना दूसरी पर्याय दूसरा कर दे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। वस्तु का स्वरूप ही सामान्य-विशेष है। सामान्य अर्थात् ध्रुव, विशेष अर्थात् पर्याय। आहाहा! हसमुखभाई! ऐसा सब सुना नहीं। पत्थर में निकाला झपट्टा। हमारे आया है न मनसुख। वह वहाँ मजदूरी करे - धन्धा। आहाहा! यह प्रभु चैतन्यस्वरूप एक समय में सब जानता है। यह क्या कहते हैं?

समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को सम्यक् प्रकार से (बराबर) जानते हैं। आहाहा! इसमें तो कितना आया, भगवान! वह सब जानते हैं, तो जाने ऐसा ही होता है और होता है तद्नुसार ही जानते हैं। जो होता है, उसकी अपेक्षा नहीं। आहाहा! अपनी अपेक्षा से जिस समय में जो होता है, वह अपनी अपेक्षा से अपने में स्व-परप्रकाशक शक्ति है। एक समय में जानते-देखते हैं। ऐसा भगवान का केवलज्ञान प्रत्यक्ष जैसा है, वैसा निर्णय करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। इसके भव का अन्त आता है। भगवान का निर्णय करे, उसे भव नहीं रहते। भगवान का निर्णय करे, उसे भव नहीं रहते। आहाहा!

तब १९७२ के वर्ष में कहा था। जब बहुत विवाद हुआ। हम दीक्षावाले बड़े हैं और यह तो नवदीक्षित है। दो वर्ष की दीक्षा, पच्चीस वर्ष की उम्र। ऐसा कहे तुम सब देखे, तद्नुसार (होता है उसे) मिथ्या सिद्ध करते हो? कहा, परन्तु देखते हैं, उसकी प्रतीति करे, प्रभु! उसे देखे, सबको देखे ऐसी प्रतीति करे, वह पर्याय द्रव्य पर जाती है

और द्रव्य पर जाए, उसे भव नहीं रहते। डाह्याभाई! आहाहा! समझ में आया? यह तो ६४ वर्ष पहले की बात है। तुम्हारे जन्म से पहले। आहाहा! पूर्व के संस्कार थे न, १९७२ का वर्ष। १९७० में दीक्षा। १९७२ में प्रश्न उठा तो दो दिन बहुत बड़ी चर्चा चली। एक दिन तो सम्प्रदाय छोड़ दिया। यह नहीं चाहिए। हमें कोई भी बात अन्तर में न बैठे, वह सम्प्रदाय नहीं चाहिए। एक दिन सम्प्रदाय छोड़ दिया। फिर छोटी उम्र और सब सेठिया आये। कहा - महाराज! वापस पधारो। यह क्या हुआ? कभी ऐसा कुछ बोलते नहीं, ऐसा क्या हुआ? फिर कहा, मैं सुनता था। मुझे जँचता नहीं। यह बात मुझे जँचती नहीं। आहाहा!

जिसे भगवान सर्वज्ञ का निर्णय है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर है और द्रव्य पर होने से भगवान ने उसके भव देखे नहीं। उसके भव का अभाव भगवान ने देखा है। आहाहा! वह बात यहाँ कहते हैं। केवलज्ञान... केवलज्ञान... केवलज्ञान... कहते हैं कि एक समय में स्व और पर को पूर्ण जानते हैं। आहाहा! अपनी पर्याय भी भविष्य में कैसी होगी, उसे जानते हैं। आहाहा! और भविष्य की पर्याय वर्तमान में कर सके, ऐसी केवली में भी ताकत नहीं है। आहाहा! उसकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर होने से (उसे) भव है नहीं। एकाध दो भव हैं, वह ज्ञान का ज्ञेय है। एकाध दो भव हैं तो वह ज्ञान का ज्ञेय है। ऐसा केवलज्ञान का प्रत्यक्ष निर्णय करने पर उसका यह फल है। हसमुखभाई! यह मानो कि केवलज्ञान अर्थात् क्या, णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... आहाहा! णमो अरिहन्ताणं कौन है? आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। **स्व-पर ऐसे समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को सम्यक् प्रकार से (बराबर) जानते हैं।**

गाथा-१६८

पुव्वुत्तसयलदव्वं णाणागुणपज्जएण संजुत्तं।
जो ण य पेच्छइ सम्मं परोक्खदिट्ठी हवे तस्स।।१६८।।

पूर्वोक्तसकलद्रव्यं नानागुणपर्यायेण संयुक्तम्।
यो न पश्यति सम्यक् परोक्ष-दृष्टिर्भवेत्तस्य।।१६८।।

अत्र केवलदृष्टेरभावात् सकलज्ञत्वं न समस्तीत्युक्तम्। पूर्वसूत्रोपात्तमूर्तादिद्रव्यं समस्तगुण-पर्यायात्मकं, मूर्तस्य मूर्तगुणाः, अचेतनस्याचेतनगुणाः, अमूर्तस्यामूर्तगुणाः, चेतनस्य चेतन-गुणाः, षड्ढानिवृद्धिरूपाः सूक्ष्माः परमागमप्रामाण्यादभ्युपगम्याः अर्थपर्यायाः षण्णां द्रव्याणां साधारणाः, नरनारकादिव्यञ्जनपर्याया जीवानां पञ्चसन्सारप्रपञ्चानां, पुद्गलानां स्थूल-स्थूलादिस्कन्धपर्यायाः, चर्तुणां धर्मादीनां शुद्धपर्यायाश्चेति, एभिः संयुक्तं तद्द्रव्यजालं यः खलु न पश्यति, तस्य सन्सारिणामिव परोक्षदृष्टिरिति।

जो विविध गुण पर्याय से संयुक्त सारी सृष्टि है।
देखे न जो सम्यक् प्रकार परोक्ष रे वह दृष्टि है॥१६८॥

अन्वयार्थ : [नानागुणपर्यायेण संयुक्तम्] विविध गुणों और पर्यायों से संयुक्त [पूर्वोक्तसकलद्रव्यं] पूर्वोक्त समस्त द्रव्यों को [यः] जो [सम्यक्] सम्यक् प्रकार से (बराबर) [न च पश्यति] नहीं देखता, [तस्य] उसे [परोक्षदृष्टिः भवेत्] परोक्ष दर्शन है।

टीका : यहाँ, केवलदर्शन के अभाव में (अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में) सर्वज्ञपना नहीं होता—ऐसा कहा है।

समस्त गुणों और पर्यायों से संयुक्त पूर्वसूत्रोक्त (१६७वीं गाथा में कहे हुए) मूर्तादि द्रव्यों को जो नहीं देखता;—अर्थात् मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण होते हैं, अचेतन के

अचेतन गुण होते हैं, अमूर्त के अमूर्त गुण होते हैं, चेतन के चेतन गुण होते हैं; षट् (छह प्रकार की) हानिवृद्धिरूप, सूक्ष्म, परमागम के प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य अर्थ-पर्यायें छह द्रव्यों को साधारण हैं, नरनारकादि व्यंजनपर्यायें पाँच प्रकार की *संसारप्रपंचवाले जीवों को होती हैं, पुद्गलों को स्थूल-स्थूल आदि स्कन्धपर्यायें होती हैं और धर्मादि चार द्रव्यों को शुद्ध पर्यायें होती हैं; इन गुणपर्यायों से संयुक्त ऐसे उस द्रव्यसमूह को जो वास्तव में नहीं देखता;—उसे (भले वह सर्वज्ञता के अभिमान से दग्ध हो तथापि) संसारियों की भाँति परोक्षदृष्टि है।

गाथा -१६८ पर प्रवचन

(गाथा) १६८

पुव्वुत्तसयलदव्वं णाणागुणपज्जएण संजुत्तं।
जो ण य पेच्छइ सम्मं परोक्खदिट्ठी हवे तस्स।।१६८।।

जो विविध गुण पर्याय से संयुक्त सारी सृष्टि है।
देखे न जो सम्यक् प्रकार परोक्ष रे वह दृष्टि है॥१६८॥

टीका : यहाँ, केवलदर्शन के अभाव में... पूर्ण देखने के अभाव में, पूर्ण प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में। आहाहा! तीन काल-तीन लोक पूर्ण एक समय में देखे, उसके अभाव में। यह यदि न हो तो उसके अभाव में **(अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में) सर्वज्ञपना नहीं होता...** आहाहा! तीन काल-तीन लोक देखे, यह नहीं होता। अभी शंका करते हैं। क्रमबद्ध की बात आयी न? क्रमबद्ध की बात में लोगों को शंका पड़ती है। क्रमबद्ध है तो फेरफार नहीं कर सकते। केवलज्ञान में भी शंका पड़ती है। केवलज्ञान में देखा, उसने भविष्य काल कैसा होगा, उसे नहीं जानते। भूतकाल देखते हैं, वर्तमान देखते हैं। भविष्य में क्या होगा? वह नहीं। ऐसी शंका करते हैं, क्योंकि उस केवलज्ञान का निर्णय करने जाए तो क्रमबद्धपर्याय सिद्ध हो जाती है।

---

* संसारप्रपंच = संसारविस्तार। (संसारविस्तार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव—ऐसे पाँच परावर्तनरूप है।)

प्रत्येक द्रव्य की जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। दूसरे समय में दूसरी नम्बरवार। नम्बरवार। स्टेशन में टिकिट देते हैं न? २५-५० लोग ऐसे नम्बरवार खड़े होते थे न? एक के बाद एक टिकिट देते हैं न? यहाँ नम्बरवार पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! सर्व पर्यायों को जाना, वह जाननेवाला केवलज्ञान। उस केवलज्ञान को जिसने जाना, उसे केवलज्ञान हुए बिना रहेगा नहीं। आहाहा! समझ में आया? बात साधारण है, परन्तु अन्दर रहस्य बहुत है।

केवलज्ञान एक समय की पर्याय, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, एक सेकेण्ड के असंख्य समय, उसके असंख्यवें भाग, एक समय में तीन काल-तीन लोक को प्रत्यक्ष देखते हैं। आहाहा! उसकी प्रतीति, विश्वास में पूरा द्रव्य आ जाता है। क्या कहा? उसकी प्रतीति में पूरा द्रव्य आ जाता है, तो द्रव्य की प्रतीति हुई, उसे भव नहीं रहते। आहाहा! कोई भी विचार बिना मानना, (वह तो) दूसरा कोई आवे तो बदल डाले। यथार्थ परीक्षा करके माना हो तो वहाँ पक्का होकर रहे। यह यहाँ कहते हैं।

यहाँ, केवलदर्शन के अभाव में (अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में) सर्वज्ञपना नहीं होता, ऐसा कहा है। समस्त गुणों और पर्यायों से संयुक्त पूर्वसूत्रोक्त (१६७वीं गाथा में कहे हुए) मूर्तादि द्रव्यों को जो नहीं देखता;— मूर्त और अमूर्त, द्रव्य और पर्याय। आदि में। मूर्त द्रव्य और उसकी पर्याय, जिस समय में होनेवाली है वह और अमूर्त में भी जिस समय में होनेवाली है वह। **मूर्तादि...** है न? आदि में द्रव्य, गुण और पर्याय सब आ गया। आहाहा! ऐसा उपदेश है। उसमें क्या करना? करना यह। प्रभु! करना यह है। पूर्ण ज्ञानप्रकाश का पूर। पूर्ण ज्ञानप्रकाश के नूर का पूर परिपूर्ण परमात्मा तू, ऐसे सन्मुख होकर अनुभव और प्रतीति करना, वह करना है। आहाहा! बाकी यहाँ कोई क्रिया करना, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा!

समस्त गुणों और पर्यायों... देखो! सभी पर्याय आयी न? भूत और भविष्य। तीन काल की द्रव्य की, तीन काल की जो पर्याय, उनके **संयुक्त पूर्वसूत्रोक्त (१६७वीं गाथा में कहे हुए) मूर्तादि द्रव्यों को जो नहीं देखता;...** उनकी पर्याय को न देखे, द्रव्य को न देखे... आहाहा! कोई भी अनन्त काल बाद की पर्याय को वर्तमान में न देखे... आहाहा! अनन्त काल बाद पर्याय होगी, उसे वर्तमान में यदि न देखे तो वह सर्वज्ञ नहीं है।

आहाहा! बात सादी भाषा (में) है। मर्म बहुत गहरा है। आहाहा!

जो ज्ञान भविष्य की अनन्त... अनन्त... अनन्त... पर्याय नहीं (हुई) वह है, ऐसा न जाने, न माने, उसे केवलज्ञान की श्रद्धा नहीं है, उसे द्रव्य की श्रद्धा नहीं है। उसकी द्रव्य पर दृष्टि नहीं है। उसकी दृष्टि पर्याय पर, कलंक पर है। आहाहा! भाषा सादी है। पूर्णस्वरूप... यह परमाणु तो जड़, मिट्टी-धूल है। कर्म अन्दर है, वह मिट्टी-धूल है। पुण्य-पाप के भाव, वे भी अजीव-जड़ हैं। इसके अतिरिक्त प्रभु चैतन्य है। वह परिपूर्ण प्रत्यक्ष होनेयोग्य है। आहाहा! तीन काल-तीन लोक की पर्याय सहित द्रव्य जाननेयोग्य है, जानने की शक्ति रखता है, ऐसा यदि न माने... आहाहा!

अर्थात् मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण होते हैं, अचेतन के अचेतन गुण होते हैं, अमूर्त के अमूर्त गुण होते हैं, चेतन के चेतन गुण होते हैं; षट् (छह प्रकार की) हानिवृद्धिरूप, सूक्ष्म, परमागम के प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य अर्थ-पर्यायें... आहाहा! छहों द्रव्यों में एक समय की पर्याय में केवलज्ञान की पर्याय में भी षट्गुण हानि-वृद्धि होती है। आहाहा! अगम्य-गम्य बात है। केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक जाने, उसमें कमी नहीं होती। परन्तु पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धि होती है। आहाहा! यहाँ परमात्मा जगत का अस्तित्व, कितने जोरवाला अस्तित्व है, सत्ता कितनी जोरवाली है, उसकी बात करते हैं। उस सत्ता का स्वीकार करे और जन्म-मरण रहे, ऐसा बिल्कुल नहीं होता। आहाहा! उसके जन्म-मरण का अन्त आ जाता है। उस सत्ता का स्वीकार करे, वहाँ (जन्म-मरण नहीं रहते)। आहाहा!

पूर्ण स्वरूप **द्रव्यों को साधारण...** देखो! (स्वीकार करनेवाला) **अमूर्त के अमूर्त गुण होते हैं, चेतन के चेतन गुण होते हैं; षट् (छह प्रकार की) हानिवृद्धिरूप, सूक्ष्म, परमागम के प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य...** परमागम से स्वीकार करनेयोग्य है। सूक्ष्म षट्गुण वृद्धि की पर्याय। एक तो एक समय की पर्याय है। एक समय की पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धि। आहाहा! गजब बात है। षट्गुण हानि-वृद्धि का अर्थ अनन्त गुण वृद्धि और अनन्त गुण हानि होती है। केवलज्ञान मिटकर मनःपर्ययज्ञान हो जाता है, ऐसा नहीं और वृद्धि होती है तो केवलज्ञान से वृद्धि होकर दूसरी शक्ति बढ़ती है, ऐसा नहीं है। ऐसा परमागम ऐसा लिया। **परमागम के प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य...** तेरे तर्क और युक्ति काम नहीं आयेंगे। आहाहा!

परमागम के प्रमाण से (यह सूक्ष्म) स्वीकार करनेयोग्य अर्थ-पर्यायें छह द्रव्यों को साधारण हैं,... छहों द्रव्यों में वह पर्याय है। आहाहा! वह है, सब है परन्तु उसका कारण क्या? यह सब है, उसकी सत्ता का स्वीकार क्या है? उसकी अन्दर महिमा है। यह सब है। एक समय की पर्याय में भी षड्गुण हानि-वृद्धि... आहाहा! यह परमागम से प्रमाण है। परमागम से प्रमाण करनेयोग्य है। तू तर्क करने जाएगा तो तर्क काम नहीं करेंगे। केवलज्ञान की पर्याय ने भी षड्गुण हानि-वृद्धि (होती है)। आहाहा! अनन्त गुण वृद्धि और अनन्त गुण हानि, असंख्य गुण वृद्धि और असंख्य गुण हानि, संख्य गुण वृद्धि और संख्य गुण हानि। एक समय में। एक समय में अनन्त गुण वृद्धि और दूसरे समय में अनन्त गुण हानि, ऐसा नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म!

एक ही समय में एक ही पर्याय में, एक ही समय में षड्गुण हानि-वृद्धि होती है। वहाँ तर्क काम नहीं करता। जहाँ युक्ति काम नहीं करती और इतना बाकी न रहे तो केवलज्ञान ने क्या जाना? आहाहा! वह केवलज्ञान में ज्ञात होता है। इसलिए कहा न? **परमागम के प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य अर्थ-पर्यायें छह द्रव्यों को साधारण हैं,...** छहों द्रव्यों में वह षड्गुण हानि-वृद्धि है। बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : व्यय में हानि और उत्पाद में वृद्धि ऐसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय होता है। उत्पाद-व्यय में षड्गुण हानि-वृद्धि कोई सूक्ष्म परमागम से प्रमाण करनेयोग्य है। आहाहा! तर्क से यह बात नहीं बैठती। केवलज्ञान में अनन्तगुणी वृद्धि और अनन्तगुणी हानि और वह भी एक समय में दोनों। हानि-वृद्धि एक समय में दोनों। हानि-वृद्धि में केवलज्ञान हीन होता है, तीन काल तीन लोक देखे और कम हो जाए तथा वृद्धि होने पर वृद्धि हो जाए, ऐसा है नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म आया।

परमागम के प्रमाण से... परमागम के प्रमाण से, यहाँ तो ऐसा कहा। भगवान की जो वाणी आयी, उसमें जो परमागम की रचना हुई, उस परमागम के प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य अर्थपर्याय छहों द्रव्यों को साधारण है। छहों द्रव्यों में वह होती है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है। पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय तीन काल-तीन लोक को देखे, उसमें बढ़-घट नहीं होती। परन्तु कोई सूक्ष्म परमागम से केवलज्ञान को देखा... आहाहा! कि

केवलज्ञान की पर्याय में भी एक समय में अनन्त गुण वृद्धि, अनन्त गुण हानि एक समय में होती है, तो भी केवलज्ञान तो ऐसा का ऐसा प्रत्यक्ष तीन काल-तीन लोक जानता है। आहाहा! कठिन है। अभी स्थूल बात में भी विचार चलता नहीं और यह षट् द्रव्य में साधारण। छहों द्रव्यों में साधारण वह अर्थ पर्याय है। जो समय-समय में प्रत्येक पर्याय में षड्गुण हानि-वृद्धि एक पर्याय में नहीं परन्तु प्रत्येक में (होती है)। आहाहा! अनन्त गुण की जो अनन्त पर्यायें हैं, उन एक-एक पर्याय में षड्गुण हानि-वृद्धि परमागम से प्रमाण करनेयोग्य है। है या नहीं? आहाहा! इसे यहाँ तक जाना... आहाहा!

उसकी ताकत, पर्याय की ताकत। पूर्ण हुई, उस पर्याय में भी षड्गुण हानि-वृद्धि होती है, वह परमागम से प्रमाण करनेयोग्य है। तर्क से, युक्ति से नहीं बैठ सकती। आहाहा! वह भी यदि ज्ञात हो तो केवलज्ञान में क्या जानने का रहा? आहाहा! केवलज्ञान अद्भुत...! षट् द्रव्य में षट् द्रव्य अनन्त। अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें, एक-एक पर्याय में षड् गुण हानि-वृद्धि... आहाहा! वह आगम प्रमाण से माननेयोग्य है। आहाहा!

पहले आस्था हुई है, उसे यहाँ कहते हैं। आत्मा के द्रव्य की आस्था हुई है, गुण की हुई है, पर्याय की हुई है। उस पर्याय में भी एक समय में केवलपर्याय इतनी की इतनी रहती है और जानना देखना तीन काल-तीन लोक का (होवे), उसमें घट-बढ़ नहीं, परन्तु अन्दर में कोई घट-बढ़ होती है... आहाहा! वह एक समय में छहों प्रकार। अनन्त गुण वृद्धि, अनन्त गुण हानि, असंख्य गुण वृद्धि, असंख्य गुण हानि, संख्य गुण वृद्धि, संख्य गुण हानि। छह प्रकार एक समय में केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य एक-एक पर्याय में षड् गुण हानि-वृद्धि भगवान देखते हैं। आहाहा! परमागम से माननेयोग्य है। आहाहा! आचार्यों को ऐसा कहना पड़ा। आया न?

परमागम के प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य अर्थ-पर्यायें छह द्रव्यों को साधारण हैं,... छहों द्रव्य में है। आहाहा! एक परमाणु में भी अनन्त गुण, उसकी अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें, उसकी एक पर्याय में षड्गुण हानि-वृद्धि। ऐसी अनन्त पर्यायों में षड्गुण हानि-वृद्धि। तर्क करेगा तो नहीं बैठेगा। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा ने ज्ञान में जो देखा कि अन्दर ऐसा होता है, वह छद्मस्थ के ख्याल में नहीं आता, इसलिए वस्तु बदल नहीं जाती। आहाहा! षड्गुण हानि-वृद्धि, वह छहों द्रव्यों में साधारण है। विशेष फिर कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)